International Journal of Multidisciplinary Trends

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2023; 5(1): 03-05
Received: 06-11-2022
Accepted: 08-12-2022

तारा बाई मीना
(शोधच्छात्राः), संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान, JNU, नई दिल्ली, बिहार, भारत

Corresponding Author:
तारा बाई मीना
(शोधच्छात्राः), संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान, JNU, नई दिल्ली, बिहार, भारत

गुरूड पुराण में वर्णित आहार-विहार में स्वस्थवृत की दिनचर्या

तारा बाई मीना

सारांश
प्राचीन भारतीय वाङ्मय एवं प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति में पुराणों का वही महत्त्व है जो महत्त्व वर्तमान युग में विज्ञान का है। भारतीय वाङ्मय में पुराणों के अतिरिक्त वैदिक साहित्य (संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद) तथा भागवद् गीता और रामायण का भी उतना ही महत्त्व है जितना पुराणों का है। ये विविध ग्रन्थ प्राचीन भारतीय धर्म और जीवन के मूलाधार रहे हैं। जिस प्रकार वैदिक साहित्य की विविध शाखाएँ थी इसी प्रकार वैदिक धर्म की भी विविध धाराएँ इस पवित्र भूमि के विचार क्षेत्र को सींचती रही है। इन्हीं विविध दार्शनिक शाखाओं में पौराणिक शाखा भी अपने वैविध्यपूर्ण ज्ञान के कारण विश्वविश्रुत हुई।
जिस प्रकार वैदिक साहित्य अनेकविध ज्ञानराशियों को अपने में समेटे हुए है उसी प्रकार पुराणसाहित्य भी अनेक प्रकार की ज्ञान विधाओं से आप्लावित है। अट्ठारह पुराणों में उसी तत्त्व दृष्टि से जीव-जगत् एवं ईश्वर का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इन सबसे अतिरिक्त आयुर्वेद जैसे अनेक प्रासग्कि विषयों का निरुपण भी इन पुराणों में मिलता है। अग्नि पुराण जिस तरह भारतीय विधाओं का भुवनकोश कहलाता है उसी प्रकार गरुडपुराण भी अनेक विधाओं का आश्रयस्थल है। यद्यपि लोक में गरुडपुराण की प्रसिद्ध श्राद्धकर्मो के सम्पादन के रूप में है तथापि यहाँ अनेक विधाओं का निरूपण है जिनमें आयुर्वेद का भी विशद विवेचन किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में गरुडपुराण में वर्णित दिनचर्या पर प्रकाश डाला गया है।

कुटशब्दः वैविध्यपूण, सम्प्राप्ति, श्लेष्मा, प्राधान्य, क्रोधात्पादक, दाहोत्पादक, वातजन्य

प्रस्तावना
प्राचीन भारतीय वाङ्मय एवं प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति में पुराणों का वही महत्त्व है जो महत्त्व वर्तमान युग में विज्ञान का है। भारतीय वाङ्मय में पुराणों के अतिरिक्त वैदिक साहित्य (संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद) तथा भागवद् गीता और रामायण का भी उतना ही महत्त्व है जितना पुराणों का है। ये विविध ग्रन्थ प्राचीन भारतीय धर्म और जीवन के मूलाधार रहे हैं। जिस प्रकार वैदिक साहित्य की विविध शाखाएँ थी इसी प्रकार वैदिक धर्म की भी विविध धाराएँ इस पवित्र भूमि के विचार क्षेत्र को सींचती रही है। इन्हीं विविध दार्शनिक शाखाओं में पौराणिक शाखा भी अपने वैविध्यपूर्ण ज्ञान के कारण विश्वविश्रुत हुई।
जिस प्रकार वैदिक साहित्य अनेकविध ज्ञानराशियों को अपने में समेटे हुए है उसी प्रकार पुराणसाहित्य भी अनेक प्रकार की ज्ञान विधाओं से आप्लावित है। अट्ठारह पुराणों में उसी तत्त्व दृष्टि से जीव-जगत् एवं ईश्वर का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इन सबसे अतिरिक्त आयुर्वेद जैसे अनेक प्रासग्कि विषयों का निरुपण भी इन पुराणों में मिलता है। अग्नि पुराण जिस तरह भारतीय विधाओं का भुवनकोश कहलाता है उसी पकार गरुडपुराण भी अनेक विधाओं का आश्रयस्थल है। यद्यपि लोक में गरुडपुराण की प्रसिद्ध श्राद्धकर्मो के सम्पादन के रूप में है तथापि यहाँ अनेक विधाओं का निरूपण है जिनमें आयुर्वेद का भी विशद विवेचन किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में गरुडपुराण में वर्णित दिनचर्या पर प्रकाश डाला गया है।
गरुडपुराण का आयुर्वेद प्रकरण अत्यन्त महत्त्व का है। इस प्रकरण के प्रथम बीस अध्यायों में निदान स्थान के विषय वर्णित है। किस कारण से रोग उत्पन्न हुआ है और रोग का लक्षण क्या है जिससे रोग का निर्णय हो सके इत्यादि विषय "निदान" शब्द से अभिप्रेत हैं। इसके बाद लगभग चालीस अध्यायों में रोगों की चिकित्सा हेतु औषधियों का निरूपण हुआ है तथा उन औषधियों के निर्माण की विधि बतायी गयी है। इस औषधि का यह अनुमाप है, किस प्रकार इसका सेवन करना चाहिए आदि बताया गया है-
यहाँ धन्वतन्तरि जी सुश्रुत को कहते हैं कि जिस प्रकार आत्रेय आदि मुनियों ने रोगों का निदान बताया है वैसे ही मैं तुम्हें सुनाता हूँ। सर्वप्रथम यह ज्ञानव्य है कि रोग कहते किसे हैं- त्रिदोषों (वात-पित्त कफ) का समावस्था में न रहना इनमें से किसी एक अथवा दो का आधिक्य होना विकार उत्पन्न करता है एवं उसी विकार से रोगों की उत्पत्ति होती है।

रोगों के पर्यायवाची बताते हुए कहा गया है कि–

रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुष्टभामथः।
यक्ष्मातटगदाबाधाः शब्दाः पर्यायवाचिनः।।

अर्थात्– पाप्मा, ज्वर, व्याधि, विकार, दोष, आमय, यक्ष्मा, आतंक, गद एवं आबाध से रोग के पर्यायवााची हैं। इन शब्दों का जहाँ प्रयोग आये वहाँ रोग का बोध करना चाहिए।
इन रोगों को जानने का क्या उपाय हो बताया गया है कि–

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा।
सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम्।।

निदान, पूर्णरूप, रूप उपशय व सम्प्राप्ति इन पांच रूपों से रोग का ज्ञान होता है। इनमें निदान, निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान व कारण से जाना जाता है अर्थात् रोग का हेतु आदि जानना निदान है। दोष विशेष के ज्ञान के बिना ही उत्पन्न होने वाला रोग जिन लक्षणों से जाना जाता है उसे पूर्वरूप कहते हैं। यह पूर्णरूप सामान्य व विशेष के भेद से दो प्रकार का है। यह उत्पद्यमान रोग जिन लक्षणों से जाना जाता है उन लक्षणों का अल्पता के कारण थोड़ा व्यक्त होना पूर्वरूप कहलाता है और वही पूर्णरूप व्यक्त हो जाने पर रूप कहलाता है। हेतु विपरीत व्यधि, विपरीत, हेतु व्याधि उभय विपरीत औषध, अन्न तथा विहार के परिणाम में सुखदायक उपयोग को उपशय कहते हैं, इसी का नाम सात्म्य भी है। दोष जिस प्रकार निदानों से दूषित होकर विसर्पण करते हुए (धातु आदि को दूषित कर) रोग को उत्पन्न करता है उसको सम्प्राप्ति कहते हैं। इस सम्प्राप्ति के संख्या विकल्प, प्राधान्य बल आदि भेद से अनेक प्रकार हैं, जैसे उसी निरूपण में बताया गया है कि ज्वार के आठ भेद होते हैं, यह संख्या सम्प्राप्ति हुई।

संख्याविकल्पप्राधान्य बल कालविशेषतः।
सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति।।

रोगोत्पत्ति में कारणभूत दोषों की अंशकल्पना (न्यून अथवा आधिक्य) आदि का विवेचन विकल्पसम्प्राप्ति कहलाता है। स्वतंत्रता और परतंत्रता द्वारा दोषों का प्राधान्य या अप्राधान्य विवेचन प्राधान्यसम्प्राप्ति, हेतु पूर्णरूप और रूप की सम्पूर्णता अथवा अल्पता के द्वारा बल अथवा अबल का विवेचन बलसम्प्राप्ति और दोषानुसार रात्रि, दिन, ऋतु एवं भोजन के परिपाक के अंश (आदि, मध्य और अन्त द्वारा रोगकाल के ज्ञान को कालसम्प्राप्ति होती है।
अब यह विवेचन किया जाता है कि सभी रोगों का मूल कारण क्या है? इसमें बताया गया है कि सभी रोगों का मूल कारण शरीर में स्थित कुपित दोष ही हैं, किन्तु दोष प्रकोप का भी कारण अनेक प्रकार के अहितकर पदार्थों का सेवन है। यह अहितकर सेवन तीन प्रकार का होता है– असात्म्येंन्द्रियार्थसंयोग, प्रज्ञापराध तथा परिणाम।

इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यसनोपदेक्ष्यते।
सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिताः मलाः।।
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहित सेवनम्।
अहितस्त्रिविधो योगस्त्रयाणां प्रागुदाहतः।।

अब यहाँ यह प्रतिपादित किया जाता है कि स्वस्थ रहने के लिए मनुष्य को किस तरह का अहार लेना चाहिए एवं कौन–सा अहार वर्जित है। दिनचर्या में क्या–क्या ग्राह्य एवं त्याज्य है। तीन के वात पित्र एवं कफ प्रकोपों का निदान किस प्रकार होता है– वातप्रकोप का निदानः–

तिक्तोषणकषायाम्लरूक्षाप्रभितभोजर्नेः।
धावनोदीरणनिगाजागरात्युच्चभाषणैः।।
क्रियाभियोगभीशोकचिन्ताव्यायामैयुनैः।
ग्रीष्माहोरात्रशुक्त्यन्ते प्रकुप्यति समीरणः।।

अर्थात् तिक्त, उष्ण, कटु, कषाय, अम्ल और रूक्ष खाद्यान्न का असंयमित आहार, दौड़ना, जोर से बोलना, रात्रि–जागरण तथा उच्च भाषण, कार्यों में विरोध अनुराग, भय, शोक, चिन्ता, व्यायाम एवं मैथुन करने से शरीर के अन्दर विद्यमान वायु प्रकुपित हो जाती है। विशेषतः यह वायु विकार ग्रीष्म ऋतु के दिन में तथा रात्रि में भोजन करने के पश्चात् पाक के अन्त में होता है। इस विवेचदन से यह स्पष्ट होता है कि रात्रि जागरण आदि वर्जनीय कार्य नहीं करने चाहिए एवं दिनचर्या का संतुलन समायोजित होना चाहिए जिससे वातजन्य प्रकोप नहीं हो।
पित्त का प्रकोप अथवा असम होना किन स्थितियों में होता है। यह इस तरह बताया गया है–

पित्तं कट्वम्लतीक्ष्णोष्णकटुक्रोध विदाहिभिः।
शरन्मध्याहराद्भयर्द्धविदाहसमयेषु च।।

कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, लवण तथा क्रोधात्पादक एवं दाहोत्पादक आहार लेने से पित्त प्रकुपित हो जाता है। पित्त का प्रकोप प्रायः शरद ऋतु के मध्याहन अर्धरात्रि तथा अन्य दाह उत्पन्न करने वाले क्षणों में विशेष रूप से होता है। नित्य दिनचर्या में शरद ऋतु कटु अम्लादि भोजन से बचना चाहिए।
कफ का प्रकोप किस तरह के असंयमित भोजन एवं असंयमित दिनचर्या से होता है यह निरूपण किया जाता है–

स्वाद्वमललवणास्निग्धगुर्व भिष्यन्दिशीतलैः।
आस्यास्वप्नसुखजीर्णदिवास्वप्नादिवृंदणैः।।
प्रच्छर्दनाद्ययोगेनभुक्तमात्र वसन्तयोः।
पूबनि पूर्वरात्रे च श्लेस्मा वक्ष्याभिसटरान्।।

अर्थात् मधुर, अम्ल, लवणं, स्निग्ध, गुरु, अभिस्यन्दी तथा शीतल भोजन के प्रयोग से कफ का प्रकुपित होना निश्चित है। अतः शीतल भोजन वर्जनीय है और भी बैठे रहने से निद्रा से सुख भोग से, अजीर्ण (अपच) से, दिवा शयन से, अत्यन्त बलकारक पदार्थों के सेवन से, वमन न करने से, भोजन के परिवाक के आरंभ में, दिन के प्रथम भाग में तथा रात्रि के प्रथम भाग के कफ कुपित होता है और दो–दो दोषों के प्रकोप का आहार–विहार करने से दो–दो दोष प्रकुपित होते हैं।
ऊपर विवेचन में प्रत्येक दोष के पृथक्–पृथक् प्रकुपित होने पर रोगों की उत्पत्ति को बताया गया था। अब तीनों के सम्मिलित रूप से सन्निपात रोग हो जाता है यह निरूपित करते हैं–

मिश्रीभावात्समस्तानां सन्निपातस्तथा पुनः।
संकीर्णाजीर्णविषमविरूद्धाद्यशनादिभिः।।

अर्थात् त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) इन सभी के प्रकुपित हो जाने तथा मिश्रित स्वभाव से सन्निपात की उत्पत्ति होती है।

यह सन्निपात संकीर्ण भोजन से, अजीर्णता में भोजन से, विषम तथा विरूद्ध भोजन से, मद्यपान से, सूखे शाक से, कच्ची मूली से, पिण्याक (खली) से, बात पित्त एवं श्लेष्मोत्पादक पदार्थों के उपभोग से होता है। इस प्रकार प्रकुपित वाद आदि दोष रोगों के अधिष्ठानों में जाने वाली इस वाहिनियों के द्वारा शरीर में पहुँचकर अनेक प्रकार के विकारों को उत्पन्न करते हैं।

इन सभी रोगों का मूल कारण तीनों दोषों का प्रकुपित होना है और वह प्रकोप असंतुलित आहार एवं विहार से होता है। असंतुलित आहार–विहार रोगां को उत्पन्न करता है एवं अस्वस्थता का हेतु होता है। अतः संतुलित दिनचर्या स्वस्थ शरीर का एवं स्वास्थ्य का सार है।

गरूडपुराण में आगे धन्वन्तरि जी कहते हैं कि वात पित्त एवं श्लेष्मा (कफ) से उत्पन्न ज्वर सभी रोगों का स्वामी रोगपति, ओजाऽशन (ओज को खाने वाला) मृत्युराज, पाला, अन्तक (आयु को समाप्त करने वाला) है। इस ज्वर की सभी प्राणियों में अलग–अलग रूप में स्थिति देखी जाती हैं। इन ज्वरों के अतिरिक्त आगन्तु ज्वर भी अनेक प्रकार का होता है। इस प्रकार इस पुराण में अनेक प्रकार के रोगों का निदान खोजते हुए इन सभी रोगों का उपचार बताया गया है जिसमं अनेक विधि औषध का निरूपण किया गया है। परन्तु इन सबके निरूपण से पूर्व ही बताया गया था कि इन सभी व्याधियों का हेतु अथवा कारण तीनों दोषों का प्रकुचित होना है। तीनों में से एक अथवा दोनों अथवा तीनों का मिश्रित रूप में प्रकुपित होना है। यहां यह भी बताया गया कि किस ऋतु में किस तरह के भोजन करने से व विहार करने से कौन सा दोष प्रकुपित होता है। तत् प्रतिपादित ऋतुओं में आहर व विहार का संतुलन होना आवश्यक है अन्यथा त्रिगुणों की विषमावस्था होगी जिससे रोग की स्थिति उत्पन्न होगी।

अतः उपर्युक्त विवेचन से यह कहा जा सकता है कि समामाजिक समाज में जो जीवन चर्या का स्वरूप लोगों में प्रचलित वह कथपि स्वास्थ्य के लिए हितकर नही है। गरूड पुराण में निरूपित आदर एवं विहार का संतुलित स्वरूप ही आदर्श दिनचर्या का भाग है जो कि वर्तमान युग में अतीत प्रासटिक एवं उपयोगी है। हितकर एवं पच्य आहर विहार ही स्वस्थ जीवन चर्या का आधार है यह इस पत्र के निष्कर्ष के रूप में स्थित होता है।

संदर्भ

1. ग.पु. 146–2
2. ग.पु. 146–3
3. ग.पु.146–10
4. ग.पु.146–13, 14
5. ग.पु.146–15,16
6. ग.पु.146–17
7. ग.पु. 146–18,19
8. ग.पु. 146–20